उल्लोल

लेखक

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

(आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'दो शब्द' सहित)

प्रकाशक

राधा कृष्ण आनन्द एण्ड को०

बुकसेलर्ज पब्लिशर्ज एण्ड स्टेशनर्ज

पक्का डंगा, जम्मू ।

मूल्य—२ रुपये

मुद्रक :
अमर आर्ट प्रेस मोती बाज़ार जम्मू।

समर्पण

वह अधखिली कली,
जिसे फूल बनकर सौरभ
बहाने के पूर्व ही कराल
काल के झंझावात की
लपेट में आकर जीवन के
छठे वसन्त में मुरझाना
पड़ा, ऐसी करुणा की
मूर्ति एवं प्रिय पुत्री कुमारी
कंचन को समर्पित ।

दो शब्द

उल्लोल के रचयिता पं० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। विद्याभूमि काश्मीर में उनका जन्म हुआ और काशी में अध्ययन। संस्कृत के से सुबुद्ध पण्डित हैं और हिन्दी के भावुक कवि। उल्लोल में उनकी जो कविताएं प्रकाशित हो रही हैं, उनमें उनके भावुक हृदय का परिचय मिलता है। हिन्दी उनकी आयत्त की हुई भाषा है। इस आयत्तीकृत भाषा के माध्यम से वे सुकुमार भावों को आसानी से व्यक्त कर जाते हैं। छन्दों के गठन और भाषा की चुश्ती की अपेक्षा वे भाव-भूमि की ओर अधिक झुकते हैं। मुझे उन की कविताओं में बनाव-सजाव की प्रवृत्ति नहीं दीखती। स्वाभाविक भावोद्गार ही अधिक मिलता है। यह उनकी प्रथम रचना है। मुझे विश्वास है कि उनकी कला निरन्तर विकसित होती रहेगी और सहृदयों का मनोरंजन करती रहेगी।

हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डी गढ़।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी

अपनी बात

मेरी कविताओं का यह प्रथम पुष्प पाठकों की सेवा में अर्पित है। मैंने अपने इस संग्रह में जीवन के लम्बे मार्ग का सफर करते हुए भिन्न भिन्न भाव धाराओं पर भरी गई उड़ानों को प्रस्तुत किया है। सन् १९४२ से १९६३ के आदि तक की यह लम्बी मेरे जीवन की यात्रा थी, जिसमें किशोरावस्था और यौवन के सन्धिकाल में काशी के विश्व-विद्यालय के अंचल में रह कर वहाँ की सर्वतोमुखी साहित्यिक गति-विधियों में मुझे वर्षों तक कार्य करके कुछ मिला। वह स्वतन्त्रता-संग्राम का समय था जिसमें काशी, इलाहाबाद, लखनऊ आदि शहरों में वातावरण सदा गर्म रहा करता था। विशेषकर इन नगरों के विश्व-विद्यायों में और उस से भी विशेषकर हमारे काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में, जिसे ब्रिटिश शासन की भृकुटी का शिकार होकर कुछ महीनों तक बन्द भी रहना पड़ा। मैं उस समय काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय का छात्र था, आज के स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रपति ने उस समय इस विश्व-विद्यालय को अपने उपकुलपतित्व द्वारा गौरवान्वित कर रखा था। पूज्य बापू, चाचा नेहरू, राजेन्द्र बाबू आदि गण्य-मान्य नेता समय समय पर महामना श्री मालवीय जी की इस पुण्य कृति के दर्शन करने आते और साथ ही व्याख्यानों द्वारा उत्साह वर्द्धन भी कर जाते। पूज्य महामना तो विश्व-विद्यालय में ही विराजमान थे। इधर हिन्दी के

उत्तम साहित्यकारों का जमघट भी लगा रहता और रसों में प्रधान रस वीर तथा करुणा का संचार साहित्य में हो कर गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों को भी आप्लावित करता रहता। उस समय यानी कि आज से २० वर्ष पूर्व इसके लगभग हिन्दी कविता धारा की मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं वीर, करुणा, स्वतन्त्रता, एकता, विद्रोह आदि। गुलाम भारत की आत्मा का करुण क्रन्दन प्रत्येक हिन्दी कवि की रचना में साक्षात् रूप में मुखरित हो रहा था। इसी रूप में उस समय विश्व-विद्यालयों तथा कॉलेजों के रंग-मंचों तथा छात्रावासों में सर्वत्र कवि-सम्मेलनों तथा गोष्ठियों के आयोजनों की प्रथा पूर्ण यौवन में चल रही थी। गर्मा-गर्म राजनैतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों का यह सुन्दर संगम था, जो देश भर में व्यापक हो कर परतन्त्र एवं दलित मानवता में स्फूर्ति का संचार कर रहा था। सोए हुए देश या समाज को जगाने और उसमें शत शत ज्वालामुखियों का कम्पन भर देने में बड़ा हाथ साहित्यकारों का रहा है, इस तथ्य को इतिहास घोषित करता आया है। आज भारत स्वतन्त्र है इस लिये जहाँ देश का हर वर्ग जीवन-स्तर की बुलन्दी की ओर जा रहा है, वहाँ साहित्यकार भी पीछे नहीं है। उन्हें प्रोत्साहित करने के लिये हमारी राष्ट्रीय सरकार ने विभिन्न मार्ग खोल रहे हैं। किन्तु हम उन गरीब हिन्दी लेखकों और कवियों को कभी नहीं भूल सकते जिन्होंने विदेशी शासकों के युग में चने चबा कर फटे पुराने कपड़े पहन कर और सरकार के कोप-भाजन बन कर भी इस साहित्य दीपक को तूफानों में प्रज्वलित कर रखा। आज उन्हीं की अमर-साधना रँग ला रही है। हाँ तो जिस युग

का अभी अभी मैंने पाठकों को स्मरण दिलाया है, उसी युग के वातावरण में बैठ कर मैंने हिन्दी साहित्यकारों तथा नेताओं से इस दिशा में प्रेरणा प्राप्त की। मेरे विश्व-विद्यालय काल में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० शिवमंगल सुमन भी यहीं के छात्र थे, इनसे मेरा विशेष मेल-जोल था तथा कई-एक बार हमने कवि-सम्मेलनों में एक साथ भाग भी लिया। उस समय डा० सुमन एम० ए० करके पी० एच० डी० कर रहे थे। एम० ए० कक्षा तक पहुंचते २ इन की ख्याति कवि के रूप में प्रान्त भर में फैल चुकी थी। उसी समय मैं मित्र या सहयोगी के रूप में इनके साथ रहने लगा। सुमन जी हँसमुख, उदार, मिलनसार और गोष्ठी-प्रिय युवक थे। विद्यार्थियों या कवियों के समाज में इन के पहुँचने से ही वातावरण बड़ा मधुर और सरस हो जाता था। बात करने का ढंग एवं शिष्ट हास्य-विनोद की चतुरता इनमें विशेष थी। मुझे इनका स्वभाव उस समय और अब भी बहुत पसन्द है। डा० सुमन के सम्पर्क में आकर मेरा हिन्दी कविता की ओर अत्यधिक झुकाव होने लगा। यद्यपि इनके पूर्व भी मैंने दो चार कविताएं लिखी थीं, किन्तु मेरी इस दौर की साहित्य-साधना में वे नहीं आ सकतीं इसी कारण मैंने उन्हें इस संग्रह में नहीं दिया।

मेरी इन संगृहीत कविताओं पर उसी युग का प्रभाव पड़ा हुआ है। इस लिए स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की जो 'नई धारा' हिन्दी कविता में आज चल रही है, उसमें ये मुश्किल से ही आ सकेंगी। वह गुलामी गरीबी और संघर्ष का समय था इस

लिए करुणा विद्रोह और क्रान्ति के विचार ही सब ओर मुखरित हो रहे थे। मेरी इन कविताओं में भी अधिकतर उन्हीं विचारों ने स्थान पाया हुआ है। कभी कभी देश की परतन्त्रता पर उन्मन होने की घड़ी में मेरा आत्म-विश्वास और आत्मबोध इतना तीव्र हो उठता कि मुझे ऐसा लगता जैसे अनन्त शक्ति मुझ में हिलोरें ले रही हो :—

मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्‌गार भरा है।

सागर के सीमित जल-कण में,
सागर प्रतिबिम्बित रहता है,
संसृति के कम्पित अणु-अणु में,
संसृति का कम्पन रहता है।

मेरी भी लघु काया में भूमण्डल का विस्तार भरा है।

जब नभ का उद्‌गम फूटेगा,
सागर का भी गर्जन होगा,
प्रबल प्रभंजन के झोंकों में,
धूलि - पुञ्ज का नर्तन होगा।

इस प्रलयंकर आँधी में, मेरा जगमग दीप जरा है।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उदगार भरा है।

देश में परतन्त्रताजन्य मुसीबतें सर्वसाधारण के लिए थीं।

किसान, मज़दूर, क्लर्क, अध्यापक, दुकानदार आदि सब गरीबी का शिकार थे और सब के हृदयों में वेदना थी। इसी प्रकार विद्यार्थी समाज भी चन्द अमीरों के लड़कों को छोड़ कर गुलामी भुखमरी और गरीबी का शिकार बन कर कठिनाई से विद्या प्राप्त कर रहा था। उसके अन्दर भी युवकोचित क्रान्ति, विद्रोह, विदेशी सरकार के प्रति घृणा तथा आत्म-ग्लानि के भाव थे। यह आत्म-ग्लानि संवेदनशीलता की घड़ियों में मुझ में उमड़ कर कुछ रोना रो जाती:—

छा गया पथ पर अन्धेरा,
मिट गया मधुमास मेरा,
क्या करूं किस ओर जाऊँ,
यह जलन कैसे मिटाऊँ।

विकल भूले पथिक सा पथ-भ्रष्ट होता जा रहा हूँ।
शून्य जीवन क्षितिज के उस पार चलता जा रहा हूं।

कभी कभी नर-कंकालों के विलखते चेहरों को देख कर भी मेरा हृदय रो उठता था:—

शूल पर मैं तुल रहा हूं।
हो गया जीवन अधूरा,
मिल गया अभिशाप पूरा,
प्राण में ज्वाला जला कर,

मोम-तन सा घुल रहा हूँ ।
शूल पर मैं तुल रहा हूँ ॥

तड़फते इन शिशु - जनों का,
करुण - क्रन्दन सुन चुका हूँ,
लड़खड़ाते भिक्षुकों की,
टीस से भी हिल चुका हूँ,
कर सका कुछ भी नहीं पर,
हाय ! कितना जल रहा हूँ ।
शूल पर मैं तुल रहा हूँ ॥

किन्तु यह गुलामी की जंजीर शीघ्र ही टूटेगी, यह भी मेरा पूर्ण विश्वास था । सन् १९४५ के बसन्तोत्सव पर मेरी एक कविता के दो पद्य साहित्य समिति (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय रुइया छात्रावास) की पत्रिका में छपे थे, जिन में यही विश्वास प्रकट किया गया था :—

आज हम इस नैश तम से दूर होते जा रहे हैं ।
विमल किरणों के प्रखर उन्मेष उठते आ रहे हैं ।

दुर्भाग्य से पूरी कविता के खो जाने से प्रस्तुत संग्रह में इसे नहीं ला सका । १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ-साथ मेरी कविता धारा जो निराशावाद, विद्रोह और क्रान्ति की ओर बह रही थी, ने भी नया मोड़ पकड़ा । स्वतन्त्रता की खुशियां देश

भर में मनाई जा रही थीं । बुलन्दी पर झूलते हुए राष्ट्रीय ध्वज को देख कर मुझे असीम आनन्द-लोक के दर्शन हुए मेरी हृत्तन्त्री के सितार झंकृत हो उठे :—

उच्च नभ पर झूलती स्वाधीन भारत की पताका ।

गगन में आलोक छाया,
पवन में तूफान आया,
पर्वतों की चोटियों ने,
भाल पर कुंकुम सजाया,
प्रात की स्वर्णिम विभा में,
विलय है तम की निशा का ।

उच्च नभ पर झूलती स्वाधीन भारत की पताका ।

उड़ गये सब काल बादल,
देख, रवि आया सदल बल,
भव्य भारत - भारती के,
कण्ठ में कल गान कल कल,
दिव्य पंचम गूँजता है,
उपवनों में कोकिला का ।

उच्च नभ पर·········

शस्य श्यामल है दिशायें,
लोक मंगल गीत गायें,
नव्य भारत कल्पना का,
चित्र मंजुल हम सजायें,
आज ही वरदान पाया,
युग - युगों की साधना ।

उच्च नभ पर.........

हो रही गंगा तरंगित,
उच्च हिम गिरि है सुरक्षित,
प्रहरी बन कर जो खड़ा है,
भाल पर जिस के निरन्तर,
मुकुट चांदी का जड़ा है,
गगन चुम्बी चोटियों से,
भागता दल दुश्मनों का ।

उच्च नभ पर.........

आज़ादी के बाद देश को स्वावलम्बी बनाने के लिये पञ्च-वर्षीय योजनाओं की सफलता में हमारी सरकार व्यस्त हो गई। इस योजना युग में अब साहित्य-धारा को भी सामयिक दृष्टि-कोण अपनाने की आवश्यकता थी। देश की आवश्यकताओं

में साहित्य का पूरा योगदान होता है और होना भी चाहिये। इसी सम्बन्ध में मेरी एक कविता स्थानीय सरकारी पत्रिका 'योजना' में छपी थी :—

देश में धन धान्य भर दें।
रोक कर नदी-नद-सरोवर,
फोड़ कर ऊंचे महीधर,
पाट धरणी - धरातल,
एक नव - निर्माण कर दें।
देश में धन धान्य भर दें॥
हाथ में लेकर कुदाली।
रूप - रेखा जब बना ली,
स्वेद - श्रम सरिता बहा कर,
क्या यहां जो हम न भर दें। इत्यादि।

इसी प्रकार चीन के इस नये संघर्ष के सम्बन्ध में भी मैंने कुछ कविताएं लिखीं, जिन में से एक की कुछ पंक्तियां यहां दी जाती हैं :—

उठा प्रबल तूफान।

घहर घहर तोपें घहरातीं,
ज्वाला मुखियों को बरसातीं,
धधक रही है आग धरा पर,

उठे डोल नक्षत्र गगन पर,
अरि-दल को उस दूर भगाने,
मातृ भूमि की लाज बचाने,
भारत की ये वीर टोलियाँ,
कर रहीं आज प्रस्थान । इत्यादि

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट ही हो गया होगा कि मेरी कविता का आरम्भ सन् ४२ से शुरू हो कर सन् ६३ के प्रारम्भ-काल तक चला, इतने लम्बे काल में इस क्षेत्र में जो कुछ साधना कविता में मैं कर पाया हूँ, वही संग्रह के रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। इनमें कुछ कवितायें छूट भी गई हैं, जिन्हें मैं अपनी पाण्डु लिपि में भूल या प्रमाद से नहीं लिख पाया था और न स्मृति पटल पर उन्हें स्थान दे सका, इसी कारण वे कागज़ कहीं अस्त-व्यस्तता में खो गये। फिर भी मुझे सन्तोष है कि इस प्रथम प्रकाशन में कविताओं की जितनी संख्या अपेक्षित थी वह मेरी दृष्टि में पूरी बन पड़ी है।

सारांश में मेरी कविता को दो भागों में विभक्त कर देना अच्छा होगा। स्वतन्त्रता के पूर्व और बाद के युग से सम्बन्धित। इन दोनों भागों में उपर्युक्त दृष्टिकोणों के अतिरिक्त बीच बीच में 'छाया' नैराश्य और 'रहस्य' की छाप लेकर भी कुछ रचनाएं लिखी गई हैं।

इस सम्बन्ध में 'कौन नभ में मुस्कुराया' 'अनन्त की ओर'

'टूट गया अभिमान' आदि कविताएं पाठकों को इस संग्रह में मिलेंगी। इस के अतिरिक्त वर्तमान। इस प्रकार ४२ से ६२ के अन्त तक की मेरी ये रचनाएं पाठकों की सेवा में उपस्थित हैं। मेरा यह प्रथम प्रकाशन होने के कारण इसमें त्रुटियां भी रह सकती हैं इस लिये विज्ञ पाठक उन्हें क्षमा करते हुए मुझे सूचित करें ताकि इसके द्वितीय संस्करण में वे न आ पायें।

यह बात स्पष्ट कर देनी भी अप्रासंगिक न होगी कि उपर्युक्त बीस वर्षों की इस लम्बी साधना के अन्तर्गत मैंने केवल प्रस्तुत संग्रह ही तैयार नहीं किया बल्कि इस दिशा में पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक लिखा। एक उपन्यास, एक कहानी संग्रह, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित फुटकल लेख, रेडियो भाषण, पाठ्य पुस्तकें गाईड आदि आदि। इस बीच महीनों बाद कहीं एक कविता अन्तस्तल से निकल जाती थी। इन्हीं पृथक् पृथक् बून्दों की यह छोटी सी तलैया पाठकों की सेवा में आज उपस्थित कर रहा हूँ।

संग्रह के नामकरण के सम्बन्ध में मैंने स्वयं भी खूब विचार किया और प्रो० चमन लाल सपरू (एस. पी. कॉलेज श्रीनगर) के सुझाव का भी सदुपयोग किया। दोनों की इच्छा थी कि नामकरण उल्लोल ही होना चाहिए। तत् पश्चात् आचार्यवर श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की मान्यता ने भी हमारे इस निश्चय को उत्साह पूर्वक दृढ़ कर दिया।

इस संग्रह के लिए आचार्यवर श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी

जी ने अपने अमूल्य 'दो शब्द' प्रदान करते हुए मेरा जो उत्साह वर्द्धन किया है, उस के लिये मैं उनका आजीवन आभारी हूँ।

इस संग्रह के प्रकाशन में प्रो० रामनाथ शास्त्री (आर्ट्स कॉलेज जम्मू) ने मुझे केवल सत्परामर्श द्वारा ही लाभान्वित नहीं किया बल्कि प्रकाशनार्थ आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए भी मेरा पथ-प्रदर्शन किया। शास्त्री जी स्वयं प्रसिद्ध लेखक तथा कवि हैं, इस कारण अपने साथियों को भी इस क्षेत्र में उदारतापूर्वक योगदान देते आये हैं। मैं उनका चिर आभारी हूँ।

शिवरात्री
२२ फर्वरी
१९६३

गंगादत्त 'विनोद'
केसरी कुटीर
मोहल्ला पहाड़ियां
जम्मू तवी।

विषय-सूचि

संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
३७	आये थे वे चले गये	...	५५
३८	सखि कैसी मधु ऋतु आई	...	५६
३९	विहग-बालिका	...	५७
४०	वीणा	...	५६
४१	तोड़ दो तुम प्रणय बन्धन	...	६०
४२	मेरे इन सूने सपनों में···	...	६१
४३	जीवन में आराम न पाया	...	६३
४४	कितना था मैं पछताया	...	६४
४५	उठ रे कवि कर भारी गर्जन	...	७०
४६	मत छेड़ो अब मीठा राग	...	७२

—o—

उठा प्रबल तूफ़ान

घहर घहर तोपें घहरातीं,
ज्वाला मुखियों को बरसातीं,
धधक रही है आग धरा पर,
डोल उठे नक्षत्र गगन पर,
अरिदल को उस दूर भगाने,
मातृ-भूमि की लाज बचाने,
भारत की ये वीर-टोलियाँ कर–
रहीं आज प्रस्थान !

उठा प्रबल तूफ़ान ।।

दन दन गोली दनक रही है,
रण चण्डी ज्यों मचल रही है,
घूर रहा है गर्वित पशु-बल,
खड़ा सामने लेकर दल-बल,
यही चीन गर्वित मतवाला,
हम पर हमला करने वाला,
इसे कुचलने हिम-गिरि ने है;
आज किया आह्वान ।

उठा प्रबल तूफ़ान ।।

कफ़न बाँध कर सिर पर अपने,
लुटा-लुटा कर सब सुख सपने,
गगन चुम्बिनी हिम-चोटी पर,
वायु-वेग से आगे बढ़ कर,

मद-चूर्णित कर दिया शत्रु को,
इन वीरों ने निश्चय जानो—
भारतीय नव-विजय-पताका
का होगा उत्थान ।
उठा प्रबल तूफान ॥

●

स्वामी विवेकानन्द के प्रति

वार-बार तुझ को प्रणाम !
अज्ञान तिमिर के घटाटोप में,
मूक मनुज के महा लोप में,
सूने मरु पर मधु-भरिता-
उपदेशामृत की सुर-सरिता,
शीतल-पावन वही तुम्हारी,
पूत बनी मानवता सारी,
गूँज उठा वेदान्त वाद,
जब हुआ तुम्हारा सिंह नाद,
दैन्य भाव का हुआ अन्त,
मुखरित थे सब दिग् दिगन्त,
दीन-हीन इस भारत का तूने,
किया समुज्ज्वल धरा धाम ।
वार-बार तुझ को प्रणाम ॥
भूले भारत का पथ प्रशस्त कर,
उन्नति के स्तर पर आरोपित कर
ओजस्वित् निज गिरा गान से,

देश-भक्ति की मधुर तान से,
सजग किया धरती का अञ्चल,
हिला दिया वैदेशिक भूतल,
यह वाणी थी या थी ज्वाला ?
बरसी जिससे लपटों की माला,
'सर्वधर्म सम्मेलन' के सब–
दर्शक-गण, विद्वत् जन अब
झूम रहे थे मन्त्र-मुग्ध से
पश्चिम था बोल उठा—
"भारत तूँ हैं धन्य नाम"
वार-बार तुझ को प्रणाम।
स्वामिन् तुझ को हो प्रणाम॥

●

देख रहा हूँ मौन ?

जीवन की काली रजनी में
छिप रहा इसी का सुप्रभात,
प्राणों की मुकुलित कलियों पर,
हो रहा निरन्तर तुहिन-पात,
सोच रहा हूँ खड़ा खड़ा मैं—
क्या जीवन का सार ?
नहीं देखता हूँ बच कर अब,
रहने का प्रतिकार।
फिर क्या अन्तिम लक्ष्य ?
इसी में मुरझाना चुप चाप ?

अभिशापों की 'इति' होगी
इस से अपने आप ?
नहीं नहीं यह छलना है,
बार बार फिर भी जलना है,
अन्तिम अन्त कहां है इस का,
कह सकता है कौन ?
देख रहा हूँ मौन ?
मुक्ति मुक्ति सब कहते हैं,
पर, दूर मुक्ति का धाम,
जग में केवल दौड़-धूप है,
नहीं शान्ति का नाम ।
यहां तो टुकड़ों पर तुलता है,
मानव का आदर्श,
घेर रहा है प्रति पल सब को,
यह जीवन संघर्ष ।
ढूंड रहा हूँ मैं पथ अपना,
अन्धकार के बीच,
कौन बनेगा उस अनन्त में,
मेरे मग का मीत ?
दूर गगन में दीख रहा है,
जो किरणों का जाल,
समझूं मैं चुप चाप इसे ही,
अपने सुख का भौन ?
देख रहा हूँ मौन ?
चिर अभाव की ज्वाला में

झुलस रहा संसार,
फिर भी फैल रहे हैं चारों
धुँआंदार कुविचार।
इसे समझ लूं भूल कि ममता-
माया का अभिशाप ?
जहां उलझ कर भूल चुका हूँ,
मैं भी अपना आप।
शाश्वत सुख है कहां? यहां तो
केवल उसकी आस
ओस कणों से मिट पायेगी
क्या मेरी यह प्यास ?
सुख के पीछे पड़ कर करना
नाना अत्याचार।
रीत बनी है यही जगत् की
इसे मिटाये कौन ?
देख रहा हूँ मौन ?
अन्धकार ही बढ़ता है
आता मेरे पास
है प्रकाश का लेश नहीं
जो हो इस का सुनिरास।
कौन सुनेगा मेरी भीषण-
करुणा की झंकार ?
सब तो झूम रहे हैं अपने
सुख में ही साकार।
आग दबा कर सूने उर में

घूम रहा हूँ निर्जन देश
आशा के सब फूल लुट चुके
शूल बचे हैं शेष ?
मेरी उर-वीणा का स्पन्दन
जिस में प्राणों का है क्रन्दन
राग-रागिनी भर कर नूतन
झंकृत कर दे कौन ?
देख रहा हूँ मौन ?
सुख के मीठे झोंके पर,
बलिदान हो रहा यह जीवन
समय-शिला पर घिस-घिस कर भी
मिला नहीं इस को कुछ नूतन।
भ्रान्त, क्लान्त, हो श्रान्त अन्त में
क्या पाया उपचार ?
पड़ा हुआ है अब भी सिर पर
चिन्ताओं का अति भार
कहाँ अन्त है इस चिन्ता का ?
ढूंढ रहा हूँ मैं दिन-रात
भटक रहा है शून्य-विपिन में
यह मेरा कृश-गात ।
पत-झर को आती हरियाली
कह देता है मधुमास
"यही मुक्ति का द्वार अरे ?" यह–
मुझे कहेगा कौन ?
देख रहा हूँ मौन ?

तुमने ही मुझको भटकाया

जीवन में जब तुमको पाया
एक नया संसार रचाया,
निर्मम ? छल कर तुमने-
मेरी दुनिया का सब स्वप्न मिटाया।

तुमने ही मुझको......... ।

मुझ में थी अति भावुकता,
तुझ में केवल थी लोलुपता,
विषम परिस्थिति की उलझन-
का मुझे तनिक भी ध्यान न आया।

तुमने ही मुझको......... ।

मैं था जग से निर्मोही,
लीन हुआ था अपने में ही,
तुमने ही कुछ जादू देकर,
मेरा अन्तर्ध्यान मिटाया ।

तुमने ही मुझको......... ।

जग का प्रेम सदा से कलुषित,
स्वार्थ-दम्भ-छलना से दूषित,
यही सोच मैंने भी अपने—
मन को अब सन्तोष दिलाया।

तुमने ही मुझको......... ।

सो गई वह अमर वाणी

क्षितिज से तूफान फूटा,
भारती का भवन टूटा,
हाय ? जो अवलम्ब था,
रह गई उस की कहानी।

सो गई वह..........।

लेखनी दृढ़ लौह की थी,
साधना थी युग-युगों की,
समय की सीमा मिटा कर,
हंस रही थी नौ-जवानी,

सो गई वह.......... ।

न कभी आराम पाया,
समय लिखते ही बिताया,
शारदा की अर्चना में,
ज्योति थी उसको जगानी,

सो गई वह.......... ।

अब नहीं मधुराकृति वह,
मौन है कल-कण्ठ भी वह,
चल बसे श्री 'चतुरसेन'
कर चले हिन्दी बिरानी।

सो गई वह..........।

आँसू

आज आँसू बह रहे क्यों,
सिन्धु से प्रिय होड़ लेकर ।

कौनसी दुनियां मुझे है,
कर रही इंगित गगन से,
कौनसे संदेश ये जो
तैर कर आते पवन से

प्रणय बन्धन तोड़ कर अब
चल पड़ा हूँ छोड़ कर सब
आज आंसू बह रहे क्यों,
सिन्धु से प्रिय होड़ लेकर ।

दो दिनों की सांस में,
उलझा दिये थे प्राण मैंने,
पीड़ सा बचपन बिताया,
आंसू सा यौवन मिटाया,

स्वप्न की लड़ियां खुलीं अब,
जब पड़ा निरुपाय हो कर,
आज आँसू बह रहे क्यों,
सिन्धु से प्रिय, होड़ लेकर ।

प्रिय मिलन के गीत गा कर,
मिल सका फिर भी नहीं था,
रीझ कर प्रिय प्रेम में भी,
हृदय मेरा क्या वहीं था ?

अर्चना न कर सका था,
आँसुओं के फूल देकर,
आज आँसू बह रहे क्यों,
सिन्धु से प्रिय होड़ लेकर।

युग-युगों से जगत् ने था,
प्यार निज झूठा दिखाया,
हृदय जिसने भी लिया उस-
से पुनः अभिशाप पाया,

सत्य क्या था मैं कहाँ था,
ज्ञात अब सर्वस्व खोकर।
आज आँसू बह रहे क्यों,
सिन्धु से प्रिय होड़ लेकर।

●

टैगोर

तुम हो महान्, तुम हो महान्
भारत भू के भव्य भाल,
प्राची के स्वर्णिम अरुण माल,
हे कवि कुल मानस मराल,
जन-गन-मन के कण्ठ माल,
गूँज उठी जग के कण-कण में,
तेरे उर की मधुर तान,
तुम हो महान्......।
श्याम-घटा के गर्जन से,
ज्वाला-मुखी की धड़कन से,

वर्ण वर्ण में मुखरित होकर,
दिग-दिगन्त को झंकृत कर,
भू-मण्डल से अतल-वितल तक;
पहुँचे तेरे अमर गान।

तुम हो महान्……।
हे चित्रकार, संगीतकार,
नाटक-कविता-कथाकार,
युग के अद्भुत कलाकार,
भारत संस्कृति के युगाधार,
युग-वीणा के तारों पर तूने,
किये तरंगित विविध गान।

तुम हो महान्……।
बीत रहे हैं वर्ष-मास,
सदियों के नव-नव विलास,
चिर नवीन क्षण-क्षण बन कर,
उतर रहे तुम धरती पर,
युग-युग के साथ-साथ,
नित नई तुम्हारी स्वर-उठान।

तुम हो महान्……।
अन्तर तम के महागान,
उद्वेलित जिन में ब्रह्म-ज्ञान,
हे विश्वकवि ? सावित कर,
संसृति में नव जागृति भर,

भूमण्डल के कण-कण में,
करते हो भारत का अमर नाम ।

तुम हो महान्...... ।

झरनों के कल-कल स्वर में,
सुनते दिव्य-ध्वनि पल पल में,
विद्युत रेखा की पलकों में,
रजनी की काली अलकों में,
हुआ तुम्हें ही प्रथम बार था,
उस अनन्त का विमल भान ।

तुम हो महान्...... ।

साकार ब्रह्म है विश्व रूप,
सब जन उस के ही स्वरूप,
पूजो जन-गन-देव धाम को,
जग-पालक निर्धन किसान को,
तूने ही सिखलाया हम को,
विश्व धर्म का यह विधान ।

तुम हो महान्...... ।

●

दिव्य धाम

दिव्य धाम जो महान,
सिन्धु तीर का वितान,
हम सभी की मातृ-भूमि,
हम सभी हैं भाग्यवान,

(१)

सिन्धु का पुनीत तीर,
कर यहां सुखी शरीर,
है मनुष्यता यहां,
स्वर्ग भी खड़ा यहाँ,
हम जगें, उठें, बढ़ें,
करें प्रणाम हाथ जोड़,
नर स्वरूप देव को,
मन्त्र पढ़ विकार छोड़,
हो प्रफुल्ल हर्ष नाद,
दूर कर सभी विषाद,
इस पुनीत अर्चना का,
उदित हो नया विहान,
दिव्य धाम जो महान

(२)

ध्यान लीन पर्वतों की,
शृङ्खला विशाल है,
नदी-नदी वनों-वनों को,
कण्ठ में सुमाल है,
इसी पवित्र भूधरा की,
प्रेम वन्दना करूं,
इसी को देख-देख कर,
अटूट धीर मैं धरूं,
हैं यहां अनार्य-आर्य,
शक - पठान - मुसलमान
एक रूप शान्त भाव,
हो रहे हैं कर्मवान।
दिव्य धाम हो महान

(३)

कर प्रवाह युद्ध धार,
विजयगान कर अपार,
मस्त भाव से मुखर,
चीर कर मरु उदर,

(४)

युग-युगों से कार्य लीन,
थे सभी विराम हीन,
ब्रह्म मन्त्र की पुकार,
गूँजती भी आर पार,

(३)

पर्वतों की राह से,
आ गए जो शान से,
हो गये यहीं के वे,
अब इसी में लीन वे,
हैं समीप हम सभी,
वे न दूर हैं कभी,
वाणियाँ भी मिल गईं,
जो पवित्र बन गईं,
स्वर मधुर उतार कर,
अशंक भाव धार कर,
आज स्वीय भाव की,
अलाप लें स्वतन्त्र तान।

दिव्य धाम जो महान

(४)

हृदय तन्त्र में बसी थी,
अर्चना हरी-भरी सी,
साधना की आग में,
सभी तपे थे राग में,
दे रहे थे आहुति थी-
मेल - जोल में रति,
एक ही विराट् के,
थे सभी स्वरूपवान ।

दिव्य धाम जो महान

(५)

यज्ञ वन्हि ज्वाल में,
धधकती सी आग में,
जल रही शिखा विशाल,
आज देख लो मुलाल,
हृदय को जला जला,
अचेतना का विष पिला,
जल रही यही शिखा,
लेख भाग्य का दिखा,
पर नहीं जलेगी अब,
दुःख दर्द छोड़ सब,

(६)

हम अनार्य आर्य सब,
मुसलमान हिन्दू अब,
चलो चलें मिलें जुलें,
बन्धुता का प्यार लें।
एकता के सूत्र में,
उदारता के मन्त्र में,
बहे चलो बहे चलो,
भेद - भाव छोड़ दो,
पवित्र तीर्थ तीर पर,
हाथ में सुनीर धर,

(५)

तिमिर जाल चीर कर,
उदित हो चला विहान।
दिव्य धाम जो महान्

(६)

मातृ-भूमि अर्चना,
हो समान जो महान।
दिव्य धाम जो महान

कश्मीर के बादल

देख सखि ये बादल आये।
धरा वधू का अञ्चल गीला,
वन - तरुओं का मुख है पीला,
लहर-लहर 'डल' की लहरा कर,
मस्त पवन से मिल कर गाये,
देख सखि, ये बादल आये ॥
बादाम फूल तो दूध धुले हैं,
सेब फूल भी लाल रंगे हैं,
मन्द पवन से उड़ उड़ इनकी,
पंखुड़ियों के दल-बल धाये।
देख सखी, ये बादल आये ॥
दूर धरा से ऊपर उठ कर,
राज भवन हिम-गिरि पर छाये,
घन-गर्जन के घटाटोप में,
किस अतीत की स्मृतियां लाये।
देख सखी, ये बादल आये ॥
सावन के मन-भावन के दिन,
झूम उठे धरती के निर्जन,

मेघों की भीनी चादर से,
पुलकों के अगणित चुम्बन आये।

देख सखी, ये बादल आये ॥

देवदार चीनार खड़े हैं,
उन पर कोंपल अभी नए हैं,
साँय साँय के साँस सुरीले,
नन्हे सुरभित झोंके लाये ।

देख सखी, ये बादल आये ॥

रात अँधेरी दिन अँधियारा,
घाटी पर छाया हिम का पारा,
माँझी अपने नौका घर में,
मांझिन से हिल-मिल कर गाये।

देख सखी, ये बादल आये ॥

क्षण भर रवि किरणें बिखराए,
क्षण में श्याम घटा घिर आए,
क्षण भर बर्फीले अन्धड़ से,
भू-नभ का अन्तर मिट जाये।

देख सखी, ये बादल आये ॥

रिम-झिम ने जब होली खेली,
केसर कलियाँ हँस-हँस डोलीं,
श्याम वनों ने मीठे भीने,
सुरभित मुख के साँस बहाये।

देख सखी, ये बादल आये ॥

इस पार प्रिये, लहराता जल-थल,
उस पार खड़ा फूलों का दल-बल,
सब ओर हरे जंगल भूधर,
ऊपर घन माला धहराये,
देख सखी, ये बादल आये ॥

इन्द्र धनुष के रंगों ने भी,
झरनों पर जब होली खेली,
देख घटा ने उन पर अपने,
बर्फीले तूफान बहाये ।
देख सखी, ये बादल आये ॥

सिर पर रजत किरीट सजा कर,
उन्नत गर्वित शीश उठा कर,
खड़े खड़े ये गिरि प्रहरी कब,
प्रलय घटाओं से घबराये ।
देख सखी, ये बादल आये ॥

देख घटा घिर आई सजनी

देख घटा घिर आई सजनी !
अम्बर धरती एक बने हैं,
जल-थल-नभ पर मेघ घने हैं,
रवि किरणें खा कर अँधियारी,
दिन में ही आयी है रजनी ।
देख घटा घिर आयी सजनी ॥

नाव गिरी मँझधार पड़ी है,
सागर की लहरें उमड़ी हैं,
माँझी भूल चुका पथ फिर भी,
खेव रहा क्षण-क्षण निज तरणी।

देख घटा फिर आयी सजनी॥

सागर भौंहें तान रहा है,
काल व्याल फुंकार रहा है,
नाविक इस पर क्यों घबराये,
आशा ही उस की चिर-रमणी।

देख घटा फिर आयी सजनी॥

●

माली, कलियों को मत तोड़

जीवन की नव आशाओं की
पँखुड़ियाँ न मरोड़।

अभी नहीं हँस पाईं जी भर,
खिली उमंगें कितनी आकर,
प्यासे अधरों को इन हाथों,
मसल मसल मत मोड़।

माली, कलियों को मत तोड़॥

देख हवा में डोल रही हैं,
मस्ती में ही झूम रही हैं,

फूलों की रँग-रलियों में हँस-
हँस कर इन को जोड़ ।
माली, कलियों को मत तोड़ ॥

अभी अभी यौवन उभरेगा,
मधु ऋतु का उन्माद भरेगा,
मिलने दे फूलों से पागल,
मिट्टी में मत छोड़ ।
माली, कलियों को मत तोड़ ॥

नहीं किसी से हैं कुछ लेतीं,
मधु मुस्कान सभी को देती,
इन भोली कलियों को चुनने—
से अपना मन मोड़ ।
माली, कलियों को मत तोड़ ॥

नीरवता का वह छोर

(१)

नीरवता का वह छोर,
अन्तर की एक हिलोर,
टकराती, बल खाती,
तूफान उठाती,
स्मृति पथ के—
आँगन में भूली सी,

(२)

आकुल अन्तर की—
वीणा के टूटे सब तार,
दूर क्षितिज में,
छाया तिमिर अपार,
वायु की लहरों से टकरा जाते,
मेरे लघु लघु गान,

(१)

खोई सी सिहर सिहर कर,
कम्पन भर भर
कोमल कलिका सी
मुरझा जाती
चलती जब आँधी झक-झोर।
नीरवता का वह छोर॥

(२)

सागर के उस पार प्रिये,
होता जब आह्वान,
आकुल प्राणों में,
भर जाती सिहरन,
लहरें रह रह कर,
उछल उछल कर,
भरतीं इंगित गान,
संसृति की रेखा में,
बीते कितने ही याम,
अब बिछुड़न की तड़पन में,
आकुल हैं दृग् कोर।
नीरवता का वह छोर॥

(३)

कितनी यह धूमिल छाया,
प्रिय, बिछुड़न में तुम मानो,
मैंने कितना नीर बहाया,
मिल जाऊँ तुझसे हे प्रियतम,
रो रो कर हँस हँस कर,
पा जाऊँ अक्षय-भण्डार,
यह कलुपित काया ?
है झूठे सपनों का भार,
जब तूने तन्त्री नाद सुनाया,
मैं भी चला तुम्हारी ओर,

(४)

फूले उपवन विहग हुए मुखर,
मत्त कलोल करते गिरि-निर्झर,
फिर नभ में आँधी का दल-बल,
घिर घिर कर आये बादल,
नाच उठे मत्त मयूर,
उड़ चले हँस नभ में दूर,
क्षण क्षण में संसृति का नर्तन,
अणु अणु में नव सर्जन,
हे विराट् वीणा में कितने-
स्पन्दन भर कर तुम करते अमर गान

(३)

नीरवता का वह छोर ॥

(४)

जिसमें डूब गई संसृति की शान,
स्वर के सागर में गिर कर,
बह जाऊँ इस अनन्त की ओर।
नीरवता का वह छोर ॥

(५)

बन्द हुआ नभ का द्वार,
बादल चहुँ उमड़ घुमड़ कर,
आये यम साकार,
चँचल चपला भी पल पल,
मार रही पलकें अविरल,
बैठा एकाकी मैं अपने द्वार,
जोह रहा प्रिय की बाट,
उन्मन होकर, उत्सुक होकर,
पर, तुम नहीं आये प्राणाधार,
कैसे बीतेगी सूनी रात,
सूनेपन में काँप रहा है गात,
रोते हैं प्राण देख घटा घनघोर,
नीरवता का वह छोर ॥

(६)

आओ हे हृदय-हरण,
बिछा रहा हूँ पथ पर,
अपने उर का आसन,
पुष्पों की माला पर,
झलक रहे हिम-जल-कण,
नव नव तृण राशि पर,
प्रतिबिम्बत प्रभात-अरुण,
रवि के स्वर्णिम रथ पर,
बैठे, आओ हे मम धन,
नयनों के जल से सिञ्चित,
यह पथ प्रस्तुत है जीवन-धन ?
क्यों आँख मिचौनी के रस में,
डूबे हो चित चोर।
नीरवता का वह छोर ॥

(७)

दूर समुद्र के तीर,
अनन्त जल राशि में,

(८)

हे मेरे उर के ईश ?
झुकाते तव चरणों पर,

(७)

लहरों की कितनी भीड़,
हिम-गिरि का शृंग,
मणि मुकुट जड़ा भाल-
इस का कितना उत्तुंग ?
शस्य श्यामल सब देश,
प्रकृति नटी के नर्तन में,
मनहर सुन्दर वेश,
हे सूत्रधार नचा रहे हो,
अपनी ही लय में कण कण,
भर कर अणु अणु में स्पन्दन,
अपनी अथाह शक्ति के जोर।
नीरवता का वह ओर॥

(८)

ऊँचे गिरिवर भी शीश,
कितने हो महान
इसका किया किसने अनुमान ?
रह जाते सब ज्ञान-विज्ञान,
नट लीला के चतुर चितेरे ?
कहाँ साज-बाज हैं ?
इस निर्धन-कुटिया में,
जो योग्य बनेंगे तेरे,
आस लिये हूँ फिर भी,
दीनों के अश्रुकणों पर,
होते हो आत्म-विभोर।
नीरवता का वह छोर॥

बापू

रही बापू की शान।

कोटि कोटि मानव-पुकार,
दु:खी कण्ठों का स्वर साकार,
सुना बापू ने किया जीवन-दान,
जली प्राणों की दीप-शिखा,
उसपर टूटे अगणित तूफान।

रही बापू की शान॥

सत्ता थी मद चूर,
हिंसा थी अति क्रूर,
गोली की बौछारें,
जेलों की दीवारें,
रोक न सकीं पद-गति तेरी,
हे युग-पुरुष महान ?
रही बापू की शान ॥

अस्थि पंजर सा तन
हिम-गिरि सा दृढ़ मन,
सागर से शान्त गम्भीर,
वहे जिस पर प्रवल समीर,
काली रजनी के बीच,
फूटा स्वर्ण - विहान ।
रही बापू की शान ॥

वाणी थी प्रलय हुँकार,
साम्राज्यवाद पर मचा हाहाकार,
डोल उठे ऊँचे सिंहासन,
प्रभु सत्ता में हुआ कम्पन,
गूँज उटी कण - कण में,
स्वातन्त्र्य गान की तान ।
रही बापू की शान ॥

सत्य अहिंसा के देव ?
हे भारत-भाग्य विधाता स्वयमेव,
शान्ति पाठ का रोर,
मुखरित किया सब ओर,

दानवता पर विजित हुई,
मानवता की आन ।
रही बापू की शान ॥

हे कर्मण्यता के अग्रदूत ?
जन-गन-मन के अभिरूप,
जन - शक्ति के संचालक,
भ्रातृ भाव के परिचायक,
तेरे पद-चिन्हो पर चल कर,
जग पाता कल्याण,
रही बापू की शान ॥

अटल था निज विश्वास,
पाया था आत्म शक्ति आभास,
लकुटी के बल कम्पित पद कर,
अमर एकता नाद सुना कर,
युग युग के इनिहासों का,
किया पुनर्निर्माण ।
रही बापू की शान ॥

●

शूल पर मैं तुल रहा हूँ

हो गया जीवन अधूरा,
मिल गया अभिशाप पूरा,
प्राण में ज्वाला जला कर,
मोम-तन सा घुल रहा हूँ ।
शूल पर मैं तुल रहा हूँ ॥

निर्बलों की करुण आहें,
हृदय में ज्वाला बहायें,
आज भी प्रति शब्द उन का,
मैं अकिंचन सुन रहा हूँ।
शूल पर मैं तुल रहा हूँ॥

दे सका सुख लेश किस को,
कर सका सानंद किस को,
तप्त प्राणी वृन्द के ऋण-
भार से व्याकुल रहा हूँ।
शूल पर मैं तुल रहा हूँ॥

तडफते उन शिशु जनों का,
करुण क्रन्दन सुन चुका हूँ,
लडखडाते भिक्षुकों की टीस,
से भी हिल चुका हूं,
कर सका कुछ भी नहीं पर,
हाय, कितना जल रहा हूँ।
शूल पर मैं तुल रहा हूँ॥

देश में धन धान्य भर दें

रोक कर नदि - नद - सरोवर,
फोड़ कर ऊँचे महीधर,
पाट कर धरणी धरातल,
एक नव-निर्माण कर दें।
देश में धन धान्य भर दें॥

हाथ में ले कर कुदाली,
रूप - रेखा जब बना ली,
स्वेद - श्रम - सरिता बहा कर,
क्या यहाँ जो हम न कर दें।
देश में धन धान्य भर दें ॥

हैं सभी हम देश वासी,
सुख दुःखों के एक साथी,
एक पथ अपना बना कर,
यह धरा भूस्वर्ग कर दें।
देश में धन धान्य भर दें ॥

छोड़ कर मत - भेद सारे,
हों परस्पर के सहारे,
पंचवर्षी योजना की,
सफलता साकार कर दें,
देश में धन धान्य भर दें ॥

●

टूट गया अभिमान

खिले हुए जो कुसुमित वन में,
झूम रहे अपने नव यौवन में,
उन कोमल कुसुमों का कैसा,
निर्दय है अवसान।
टूट गया अभिमान ॥

हँसी में जब रोदन है,
हरियाली में भी पतझर है,

जीवन के अभिशापों को सखि,
कौन कहे वरदान ।
टूट गया अभिमान ॥

रंग भरे जो सपने आते,
निष्फल हो कर वे हैं जाते,
मरु की कल्पित सरिता में,
क्या होता कल कल गान ?

टूट गया अभिमान ॥

जल बुद बुद से निर्मित जीवन,
इन्द्र धनुष से चित्रित क्षण क्षण,
यौवन की अंगड़ाइयों का भी–
झूठा है तूफान ।

टूट गया अभिमान ॥

रिश्ते नाते भगिनी भाई,
दारा-सुत सेवक अनुयायी,
स्वार्थ के इन पुतलों पर,
क्यों कर बैठूं गर्व गुमान ?
टूट गया अभिमान ॥

तिल-तिल कर जल जल कर,
दुःखों में जीवन भर पल कर,
खारे आँसू पी पी कर,
क्या कर दूँ जीवन दान ?
टूट गया अभिमान ॥

आगे तम - सागर लहराता,
कुटिल काल इंगित दिखलाता,
रँग - रलियों के जग का मेला,
होगा भीषण श्मशान ॥
टूट गया अभिमान ॥

जलधि की विगलित सीमा पर,
खड़ा हुआ है जीवन-तरुवर,
उत्ताल तरंगें उछल उछल कर,
कर लेंगी अन्तर्धान ।
टूट गया अभिमान ॥

—

जाने दो मत रोक लगाओ

हिलमिल कर हम क्या कर लेंगे,
बिछुड़े मन अब फिर न मिलेंगे,
व्यङ्ग्य भरी सी चितवन से,
मत उर के उद्गार दिखाओ ।
जाने दो मत रोक लगाओ ।

जीवन पथ के राही बन कर,
चले जा रहे थे हम मिल कर,
ऊँची सूनी पगडंडी पर,
छोड़ गये तुम अब न बुलाओ ।
जाने दो मत रोक लगाओ ।

अपने पैरों पर चल कर,
बढ़ना है मुझ को लम्बे पथ पर,
तुम ही थे मेरा अवलम्बन,
मन का ऐसा भाव मिटाओ,
जाने दो मत रोक लगाओ।

दुर्गम पथ पर सदा चलूंगा,
शूलों को भी फूल करूंगा,
मेरा भग ऐसा है प्रियवर,
तुम अपना ही पथ अपनाओ,
जाने दो मत रोक लगाओ।

मेरी उर-पीड़ा मदमाती,
तुम हो केवल सुख के साथी,
अपना संगी मुझे बना कर,
कभी न उल्टी धार बहाओ ।
जाने दो मत रोक लगाओ।

—

क्यों कहता जग मुझ को पागल ?

उर में अन्तर्ज्वाल जला कर,
तन को हिम सा घुला-घुला कर,
चिन्तन की मदिरा के मद में,
करता हूं मुखरित मन का पायल,
क्यों कहता जग मुझ को पागल।

दूर हटा कर अपने नाती,
विजन साधना मुझ को भाती,
जग के कोलाहल से बच कर,
रहता हूं भावुकता में विह्वल।
क्यों कहता जग मुझको पागल।

जग सुख की निद्रा में सोता,
मुझ को आकर्षण नहीं होता,
उर की मीठी धड़कन लेकर,
जगने में मैं हूँ अति चंचल,
क्यों कहता जग मुझ को पागल।

—

बहिन थी विधि ने दिखाई

(दिवंगत बड़ी बहिन की करुण स्मृति में)

लघु लता की गोद में जो,
वाल-कलिका खिल रही थी,
विजन में हिमपात से वह,
लड़खड़ाती वच रही थी,
उमड़ कर भीषण ववंडर,
क्या कहूँ क्यों आ गया था,
विपिन के उस छोर में ही,
जो अचानक छा गया था,
त्रस्त हारिणी सी सुचंचल,

पल्लवों में छिप चली जब,
हाय, निर्दय पातकी ने,
एक ही क्षण में उड़ाई,

वह्नि थी विधि ने दिखाई।

लघु क्षणों का साथ दे कर,
तोतली वाणी सुना कर,
गाँव के सूने सदन में,
नवल तर आलोक भर कर,
वह्नि, तुम ने दे दिया था,
मुग्ध उर का भार मुझ को,
बालपन में दे सका मैं,
कौन सा प्रतिकार तुझ को,
नील-नभ की गोद में जब,
मुस्कराती चाँदनी थी,
बादलों की घन-घटा ने,
श्याम चादर क्यों बिछाई।

वह्नि थी विधि ने दिखाई।

कण्टकों की गोद में पल,
घाव उस ने जो सहे थे,
मूक-उर में वेदना के,
भाव बन कर वे बहे थे,
मोतियों के हार का,
उपहार जो मुझ को दिया था,
अश्रु-जल प्रति दान दे कर,

हाय, मैंने ले लिया था,
दो दिनों का मेल था वह,
स्वप्न का सब खेल था वह,
जलन का संसार दे कर,
ले गई अन्तिम विदाई।

वह्नि थी विधि ने दिखाई।

हृदय की दीवार पर जो,
चित्र अँकित हो गया था,
समय के व्यवधान जल ने,
क्या कभी वह धो दिया था,
दूर यद्यपि हो गया है,
एक युग का वह किनारा,
राग नूतन चित्र में फिर,
तूलिका ने आज ढाला,
प्राण के अवसान में जो,
कण्ठ वीणा झनझनाई,
आज उस की रागिनी ने,
सुप्त पीड़ा फिर जगाई,

वह्नि थी विधि ने दिखाई।

—

किस विपिन में घूमते हो,
आज हे घन श्याम मेरे

उछलता है प्रलय सागर,
जगत है अभिशाप का घर,
वेदना की टीस ही है,
हो रही मुखरित निरन्तर,
कोख में वंशी दबा कर,
जा छिपे हो किस अँधेरे ।
किस विपिन में घूमते हो, आज हे घनश्याम मेरे ।
गगन में हैं काल बादल,
धरणी में आँधी सदल बल,
भूख को उर में छिपा कर,
आज मानव अधिक विह्वल,
तुम बने हो गगन - चारी,
ग़ज़ब के उन्माद तेरे ।
किस विपिन में घूमते हो, आज हे घनश्याम मेरे ।

युद्ध लोलुप शक्तियों की,
गर्जना मँडरा रही है,
विश्व पर नव त्रास की,
आतँक - भीति आ रही है,
देख कर भी क्यों खड़े हो,
सो गये सिद्धान्त तेरे ?
किस विपिन में घूमते हो, आज हे घनश्याम मेरे ।

हो रहा है स्वार्थ अभिनय,
सत्य का अब हो चला लय,
दम्भ, मद, पाखण्ड छल से,
सुजनता का हो रहा क्षय,
मैं कहूं क्या हे मुरारी,
तूं ही आ कर देख ले रे ।

किस विपिन में घूमते हो, आज हे घनश्याम मेरे ।

—

मोल न लेना पथ उलझन

पग-पायल की मृदु रुनझुन में, प्रिय, मोल न लेना पथ-उलझन ।

जीवन की लम्बी सीमा पर,
कितने कंकड़ पत्थर बिखरे,
लेकिन सीधे सज धज कर,
चलना देखो पैर न फिसले,
दायें बायें कण्टक बिखरे,
सम्मुख होती भय की सिहरण ।

पग-पायल की मृदु रुनझुन में, प्रिय, मोल न लेना पथ उलझन ।

रमणी की चंचल चितवन में,
जो ललक रही मदिरा की मस्ती,
यौवन के कुसुमित उपवन में,
वह कितनी मादकता है भरती,

क्षण भर की इस झिल-मिल में,
बलिदान न देना जीवन धन।

पग-पायल की मृदु रुनझुन में प्रिय, मोल न लेना पथ-उलझन।

मानवता की भूमि पर तुम,
निर्भय हो कर चलते रहना,
कितने पथ रोधक हैं आगे,
इस पर किञ्चित् ध्यान न देना,
फूल बनेंगे शूल निरन्तर,
पा कर जीवन का अर्पण।

पग-पायल की मृदु रुनझुन में प्रिय, मोल न लेना पथ- उलझन।

जीवन के दुस्तर सागर में,
रे नाविक ? मत पीछे मुड़ना,
झंझा के भीषण झोंकों में,
पड़, आगे ही आगे बढ़ना,
उस पार अमरता लहराती,
इस पार प्रलय का घन-गर्जन।

पग-पायल की मृदु रुन-झुन में प्रिय, मोल न लेना पथ-उलझन।

सुख की शय्या पर पड़ कर,
मत आलस की मदिरा पीना,
फूलों का जीवन दो दिन का,
काँटों का है लम्बा जीना,

जल जल कर ही कंचन बनता,
जग में सब का प्रिय दर्शन।
पग-पायल की मृदु रुनझुन में प्रिय, मोल न लेना पथ-उलझन।

बुझ गया दीपक अभागा

क्षणिक सा उन्मेष दे कर,
गगन का लघु गीत गा कर,
प्रथम झंझा पात में ही,
क्या कहूँ किस ओर भागा।
बुझ गया दीपक अभागा।

प्राण की वाती बना कर,
स्नेह का मधु दान दे कर,
टिम-टिमाया था उसे हा,
क्यों पवन का वेग जागा।
बुझ गया दीपक अभागा।

तिमिर के घन पटल में,
जो जगी थी प्रथम रेखा,
लीन फिर क्यों हो गई थी,
तोड़ कर निज प्रणय-धागा।
बुझ गया दीपक अभागा।

क्षितिज के उस छोर पर,
लघु - तारिका थी जग-मगाती,

प्रात की स्वर्णिम प्रभा ही,
बन गई दुर्भाग्य - गाथा ।
बुझ गया दीपक अभागा ।

कामना उर में छिपाये,
नवल कलिका वह खिली थी,
फूल बनने के प्रथम ही,
क्यों प्रबल हिम - पात जागा ।
बुझ गया दीपक अभागा ।

—

मैं नहीं पथ से हटूंगा

प्रलय मच जाये धरा पर,
डगमगायें निखिल भूधर,
क्रूर यम से भी समय पर,
निडर हो कर जा लड़ूंगा ।
मैं नहीं पथ से हटूंगा ।

वेदिका मेरी धरातल,
क्षुद्र - सरिता जलधि का तल,
गगन - चुम्बी चोटियाँ भी,
झुक पड़ेंगी जब चलूंगा ।
मैं नहीं पथ से हटूंगा ।

क्या करेंगी आँधियाँ भी,
हिल गईं नव सन्धियाँ भी,

गर्जना के घोर रव से,
फाड़ अम्बर बढ़ चलूंगा ।
मैं नहीं पथ से हटूंगा ।

प्रबल था तूफान आया,
मैं नहीं था डगमगाया,
टूटते तारे पकड़ कर,
कण बना कर डाल दूंगा,
मैं नहीं पथ से हटूंगा ।

●

उच्च हिम-गिरि शृंग पर टकरा रहा है घोर बादल

पवन में तूफान आया,
गगन में घन - तिमिर छाया
घन - घटा की गर्जना से
है प्रकम्पित धरणी अञ्चल ।
उच्च हिम-गिरि शृङ्ग पर टकरा रहा है घोर बादल ॥

चन्द्र - भागा बह रही है,
वन - वधू लहरा रही है,
घन - पटल में तड़ित बाला,
कर रही है हास कोमल ।
उच्च हिम-गिरि शृङ्ग पर टकरा रहा है घोर बादल ॥

गिर रही जल धार माला,
उड़ रही है हँस माला,
चातकों की स्वाति - रट से,
हो रहा मुखरित धरातल ।
उच्च हिम-गिरि शृङ्ग पर टकरा रहा है घोर बादल ॥

भर गये नदि-नद सरोवर,
हो रहा सब ओर झर झर,
शीत से भय-भीत हो कर,
नींद में सोया विहग - दल ।
उच्च हिम-गिरि शृङ्ग पर टकरा रहा है घोर बादल ॥

—

उच्च नभ में झूलती स्वाधीन भारत की पताका

गगन में आलोक छाया,
पवन में उल्लास आया,
भूधरों की चोटियों ने,
भाल पर कुंकुम सजाया,
प्रात की स्वर्णिम विभा में,
विलय है तम की निशा का ।
उच्च नभ में झूलती स्वाधीन भारत की पताका ॥

उड़ गये हैं काल बादल,
देख, रवि आया सदल बल,

भव्य भारत - भारती के,
कण्ठ में कल गान कल कल,
दिव्य पँचम गूँजता है-
उपवनों में कोकिला का ।

उच्च तम में झूलती स्वाधीन भारत की पताका ॥

शस्य श्यामल हैं दिशायें,
लोक मंगल गीत गायें,
नव्य भारत कल्पना का,
चित्र मँजुल हम सजायें,
आज ही वरदान आया,
युग - युगों की साधना का ।

उच्च नभ में झूलती स्वाधीन भारत की पताका ॥

हो रही गंगा तरंगित,
उच्च हिम - गिरि हैं सुरञ्जित,
प्रहरी बन कर जो खड़ा है,
भाल पर जिस के निरन्तर,
मुकुट चाँदी का जड़ा है,
गगन चुम्बी चोटियों से,
भागता दल दुश्मनों का ।

उच्च नभ में झूलती स्वाधीन भारत की पताका ॥

—

थके हो हे मेरे प्राण

किये हैं कितने काम,
लड़े हैं कितने संग्राम,
क्या भौतिक जड़ता में,
हुआ किसी का त्राण ?

थके हो हे मेरे प्राण ।

समझो अब गत भूल,
अपनाए हैं कितने शूल,
जीवन भी घिस गया तुम्हारा,
सहते सहते अपमान ।

थके हो हे मेरे प्राण ।

चाहते थे अरमान,
किन्तु मिली हाय थकान,
उड़े थे नभ पर पँख पसार,
गिरे धरणी पर आन ।

थके हो हे मेरे प्राण ।

दुःख द्वन्द्वों का साज,
जिस में बाधाओं का राज,
यही है आखिर संसार, ?
जिस पर इतना था अभिमान ।

थके हो हे मेरे प्राण ।

चलो अनन्त की ओर,
सान्त नहीं देगा कुछ और,
ठगा दिया अब तक सब धन,
मिला नहीं कल्याण ।
थके हो हे मेरे प्राण ।

उठाओ अब वेदान्त,
पढ़ो होकर शान्त,
आत्म - चिन्तन से ही,
मिलेगा स्वर्ण विहान ।
थके हो हे मेरे प्राण ।

अपनाओ निर्मल ज्ञान,
मिटा दो पिछला अज्ञान,
क्यों जड़ - वादों में पड़ कर,
बने हो पथ - पाषाण ।
थके हो हे मेरे प्राण ।

समझो वसुधा ही परिवार,
करो सब पर उपकार,
करुणा के अंचल में ही,
पा जाओगे निर्वाण ।
थके हो हे मेरे प्राण ।

आज प्रिये मधु बहता था

एक हिलोर उठी उपवन में,
काँप उठी नभ के कण कण में,
दूर हिमालय की गोदी में,
झर झर झंकृत होता था।
आज प्रिये मधु बहता था।

हरित दिशायें नाच रही थीं,
कुसुमित लतिकायें सिहरी थीं,
रवि की स्वर्णिम चादर से,
नभ भी कुछ इंगित करता था।
आज प्रिये मधु बहता था।

नील गगन में धूम मची थी,
सुरभित धरणी भी हर्षित थी,
उस विराट्-वीणा का नव स्वर,
अणु अणु गुञ्जित करता था।
आज प्रिये मधु बहता था।

इन्द्र धनुष के रंग लुटा कर,
झूम रहा था नव कुसुमाकर,
इस असीम में बह जाने को,
मेरा उर भी रोता था।
आज प्रिये मधु बहता था।

भर गया नव गान मन में

एक कण आलोक का प्रिय,
इस तिमिर में छा गया जब,
पुलक भर लघु प्राण में,
नव चेतना सी भर गया तब,
आज अक्षय कोष का उल्लास,
है मेरे गगन में ।

भर गया नव गान मन में ।

हो गया अभिशाप ही है,
सब सुखों का मधुर मेला,
हँस उठे हैं प्राण - पँछी,
मुस्कुराती मधुर - वेला,
आज प्रियतम आ गये जब,
छा गये इस उर गगन में ।

भर गया नव गान मन में ।

था उपेक्षित मैं जगत में,
दीनता उर में छिपा कर,
दानवों के हाथ में पड़,
पिस चला था इस धरा पर,
जब मिला अंचल तुम्हारा,
मैं बना आलोक घन में ।

भर गया नव गान मन में ।

तुम हृदय ? सर्वस्व मेरे,
ये अकिंचन प्राण लघुतम,
हैं पृथक लघु अंश तेरे,
चाहते सीमा अतिक्रम,
अब ससीस असीम बन कर,
हो चले हैं लीन तुझ में।

भर गया नव गान मन में।

●

मैंने दुःख में प्रिय को पाया

अपनी लघु दुनिया में रह कर,
पीड़ा की मीठी मदिरा पी कर,
अन्तर्भावों में बह बह कर,
अश्रु - कणों का हार बनाया,

मैंने दुःख में प्रिय को पाया।

क्षण-भर की झल-मल हैं जीवन,
क्यों सुख में पालूं अपना तन,
जल जल कर जो मिल पायेगा,
उस में ही सब सार समाया।

मैंने दुःख में प्रिय को पाया।

कितनी छलना में रह कर,
नर जगको अपना प्रिय कह कर,

इसके सुख की मृग तृष्णा पर,
मृग सा प्यासा रहता आया,
मैंने दुःख में प्रिय को पाया।

कांटे ही हैं मेरे संगी,
दुःख बाधायें मेरे अंगी,
जलते उर की दीप-शिखा ही,
जीवन का वरदान बनाया।
मैंने दुःख में प्रिय को पाया।

जितनी पीड़ा है इस जग में,
आ जाय वह सब ही मुझ में,
देख रहा हूँ भिक्षुक जग में,
दुःख ही दुःख केवल है छाया।
मैंने दुःख में प्रिय को पाया।

यह जो उर में ज्वाला पाली,
इस मेंही जीवन की लाली,
पर हित-पथ पर जल जल कर,
कंचन होगी मेरी काया।
मैंने तुःख में प्रिय को पाया।

कहता क्यों है मेरा तेरा

बीत रहा है जीवन पल पल,
कर न सका तूं कुछ इस जग पर,
आशा की उलझी अलकों में ही,
लूट चुका पगले, धन तेरा।
कहता क्यों है मेरा तेरा ।

जिन से तूने प्यार किया था,
तन-मन-धन सब वार दिया था,
कभी न देंगे साथ अकेले,
जहां करेगा अन्त बसेरा ।
कहता क्यों है मेरा तेरा ।

दुनिया का है झूठा नाता,
खिले फूल पर भौंरा आता,
कौन किसी का हुआ विपद् में,
मचा हुआ है घना अँधेरा।
कहता क्यों है तेरा मेरा ।

●

गीत बने हैं मेरे साथी

दुनिया के कटु अनुभव पाकर,
पग पग में नित ठोकर खा कर,
गीतों में छिप जाता हूँ,
शत शत पीड़ायें जब आतीं।
गीत बने हैं मेरे साथी।

जब लगता, मैं अतिदूर पड़ा हूँ,
संघर्षों से चूर हुआ हूँ,
प्रिय - चिन्तन में खोकर अन्त-
र्वीणा भी कुछ राग सुनाती।
गीत बने हैं मेरे साथी।

गाता हूँ जब विह्वल हो कर,
सुन लेता मेरा वह प्रियवर,
इन प्राणों के कम्पन पर,
उस में करुणा आ जाती।
गीत बने है मेरे साथी।

कौन नभ में मुस्कराया

सांध्य वेला आ गई जब,
अरुणिमा भी छा गई तब,
दूर अम्बर छोर से यह,
रंग था किस ने लुटाया!
कौन नभ में मुस्कराया!

तड़ित के कुण्डल पहन कर,
बादलों के पर लगा कर,
तारकों के दीपकों का,
हार भी किसने सजाया!
कौन नभ में मुस्कराया!

वह चली आँधी प्रखर तर,
चल रहा चारों बवण्डर,
साँस लेकर हाय ? किस ने,
गगन का उद्गम बहाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

जलधि में तूफान भर कर,
धरणी पर भूकम्प ला कर,
पर्वतों की हलचलों से,
विश्व था किसने हिलाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

मधुर स्वप्नों में विचरते,
प्रिय-मिलन - अभिसार करते,
कान में मेरे मधुर स्वर-
नाद किस ने झनझनाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

मैं हुआ पुलकित निरन्तर,
यह मिलन संकेत पा कर,
विलग होते विन्दू को,
किस सिन्धु ने उर से लगाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

विपद् का तूफान आया

मार्ग में धन तिमिर लाया,
वेदना का मेघ छाया,
दुःख की भीषण अनल ने,
हृदय में हा घर बनाया ।
विपद् का तूफान आया ।

चेतना को धर दबा कर,
मूढ़ता का मोह ला कर,
कण्ठ तक हा विष पिला कर,
नियति ने खञ्जर चलाया ।
विपद् का तूफान आया ।

लहलहाते हरित वन को,
मुस्कुराते नवल वन को,
प्रबल झंझा वात ला कर,
नियति ने पतझर बनाया ।
विपद् का तूफान आया ।

मिट गईं अब सब उमंगें,
चल बसीं सुख की तरंगें,
प्रतिकार लेकर दैव ने भी,
जलन का सागर बहाया ।
विपद् का तूफान आया ।

नींद को बरबस जला कर,
पंख को भूपर गिरा कर,

भभकती ज्वालामुखी में,
पकड़ कर पँछी गिराया।
विपद् का तूफान आया।

हृदय में ज्वाला छिपाये,
कण्टकों से होड़ लाए,
तोलता हूँ प्रिय-जनों को,
कौन कितना प्यार लाया।
विपद् का तूफान आया।

—

रोने का अधिकार दिलाओ

काँटों में ही जन्म लिया है,
उजड़े घर में वास किया है,
जलते वन की लकड़ी हूँ,
मुझ को मत हे मीत हिलाओ।
रोने का अधिकार दिलाओ।

सुख का मुझ को क्या अनुभव,
देखा था मैंने उस को कब ?
वैभव के झूठे स्वप्नों की,
कोमल गाथा यहाँ न गाओ।
रोने का अधिकार दिलाओ।

उर में मैंने पीड़ा पाली,
जीवन आशाओं से खाली,

अपने सुख की बातों में,
मेरे उर को मत उलझाओ।
रोने का अधिकार दिलाओ।

तुम हो राज - घरों के वासी,
मैं हूँ युग युग का वनवासी,
सुख के चिर सहचर बन कर,
दुःख सहचर के पास न आओ।
रोने का अधिकार दिलाओ।

●

पंछी नीढ़ नहीं है अपना

उड़ उड़ कर क्या खोज रहे हो,
तृण-तृण कर क्या जोड़ रहे हो,
जिस पर इतना मोह भरा है,
वह है केवल लम्बा सपना।
पंछी नीढ़ नहीं है अपना।

संध्या की लाली आती है,
क्षण भर में ही मिट जाती है,
नभ के अगणित तारों का,
देख लिया क्षणभर में मिटना।
पंछी नीढ़ नहीं है अमना।

नश्वरता ही जीवन है,
कितना इस में कम्पन है ?

कलियों के अधरों का हमने,
देख लिया क्षण भर का हँसना।
पंछी नीड़ नहीं है अपना।

जीवन की दुर्गम वीथी में,
बिखरे हैं अगणित तीखे कंकड़,
क्षणभर हँसना भी जग में,
बन जाता कितनी भीषण जलना।
पंछी नीड़ नहीं है अपना।

आशा के धुँधले दीपक पर,
कितने शलभों का बलिदान भरा है,
मीठी मदिरा की मधुशाला में.
दीख रही यह कितनी छलना।
पंछी नीड़ नहीं है अपना।

—

शून्य जीवन क्षितिज के उस पार चलता जा रहा हूँ

छा गया पथ पर अंधेरा,
मिट गया मधुमास मेरा,
क्या करूं किस ओर जाऊं,
नीड़ भी कैसे बनाऊं,

विकल भूले पथिक सा,
पथ-भ्रष्ट होता जा रहा हूँ।
शून्य जीवन क्षितिज के उस पार चलता जा रहा हूँ।

मेघ - मण्डित गगन - तल पर,
निमिष भर प्रस्फुटित हो कर,
तड़ित सी हा मधुर - घड़ियाँ,
छिप गईं वे रंग - रलियां,
स्वर्णमय मधुमास खो कर,
पतझरों में फिर रहा हूँ।
शून्य जीवन क्षितिज के उस पार चलता जा रहा हूँ।

याद आते वे नवल क्षण,
था प्रफुल्लित मन-प्रमद वन,
कल्पना के सुमन भर से,
जो सुसज्जित था निरन्तर,
क्रूर झंझा वात पर,
आँसू बहाता जा रहा हूँ।
शून्य जीवन क्षितिज के उस पार चलता जा रहा हूँ।

त्याग कर संगी हमारे,
विमुख हो कर चल दिये है,
राह लम्बी पथ कठिन है,
कण्टकाकुल हैं किनारे,
घन-तिमिर में भी किरण की,
कल्पना ले कर चला हूँ।
शून्य जीवन क्षितिज में उस पार चलता जा रहा हूँ।

—

आये थे वे चले गये

लटक रहे थे मैले चिथड़े,
रूखे केश पड़े थे बिखरे,
लकुटी के बल पर आकर भी,
इस आँगन में थे छले गये।
आये थे वे चले गये।

दुर्बल तन हा ? कम्पित था
उन्मन मन उत्पीड़ित था,
होठों की सिहरन में कुछ,
दीन वचन थे नये नये।
आये थे वे चले गये।

मैं मस्त पड़ा था आंखें मूंदे,
लूट रहा स्वप्नों की बूंदें,
करुणा के दो आँसू लेकर,
चले गये हा चले गये।
आये थे वे चले गये।

नगर नगर में देख चुका हूं,
डगर डगर में घूम रहा हूं,
पा कर शीतल छाया उनकी,
उर के घाव मिटेंगे ये।
आये थे वे चले गये।

कितना क्षोभ भरा है तन में,
अवसर खो कर रोऊँ मन में,
अब प्रियवर यदि मिल जायें,
समझूंगा दुर्दिन बीत गये।
आये थे वे चले गये।

दुनिया के हों चाहे याचक,
मेरे उर के वे अधिनायक,
करुणा स्रोत बहा कर मुझ में,
पथ-दर्शक बन चले गये।
आये थे वे चले गये।

—

सखि, कैसी मधु ऋतु आई

महक रही उपवन की प्याली,
फूल फूल में छाई लाली,
भौरों के गुण गुण गुञ्जन में,
कितनी मादकता भर आई,
सखि, कैसी यधु ऋतु आई।

सिहर उठी नव कलि का रानी,
ढुलक पड़ी इसकी मधु-दानी,
प्रकृति-नटी ने रंग-विरंगी,
चादर चहुँ ओर बिछाई।
सखि, कैसी मधु ऋतु आई।

डोल रही है डाली डाली,
पत्तों ने भी दे दी ताली,
कूक कूक कर कोयल ने भी,
मधु वर्षा बरसाई ।
सखि, कैसी मधु ऋतु आई ।

यौवन की अँगड़ाइयाँ आईं,
कलियाँ जी भर मुस्काईं,
उपवन की हरियाली ने भी,
सुन्दर छटा बहाई ।
सखि, कैसी मधु ऋतु आई ।

—

विहग बालिका

मुझे सुना दो विहग बालिके,
अपना मीठा गान,
अमृत-मय इस स्वर - लहरी में,
बह करूं अविराम ।

सूनेपन में बैठ शिला पर,
हो दुनिया से दूर,
इन मीठे कल गानों से,
होगा उर भरपूर ।

कोमल कुसुमों की शय्या पर,
जब सुना करूंगा तेरा गान,

झंकृत होगी मेरे उर की,
वीणा भी अविराम ।

नभ के पर्दे में सखि मैंने,
छिपा दिये थे अपने गान,
जीवन के वे सुप्रभात में,
मेरे थे वरदान ।

कहाँ खोजने जाऊँ उन को,
उस अनन्त के छोर,
मुझे बता दो उड़ना भी,
उड़ूं उन्हीं की ओर ।

उपवन में जब होगा मीठा,
दोनों का सह - गान,
भौंरे भी कलियों से उड़ कर,
देंगे मधुमय तान ।

सुरभित विटपों पर जब–
फूटेगा स्वर्ण विहान,
इन गानों में मुखरित होगी,
उस अनन्त - वीणा की तान ।

—

वीणा

रहने दो इस वीणा को
टूटे इस के तार,
नहीं सुनेंगे निर्मम मानव,
मुरझाई झंकार।

अब नहीं इस को अंक भरेगा,
मतलब का संसार,
गायन अपना खो कर जग में,
पड़ी हुई लाचार।

मत पूछो तुम मिला इसे था,
रमणी का उर - प्यार,
विगत मनोरम इतिहासों का,
दुहराना है बेकार।

खिली हुई नव कलिका से,
भौंरा करता प्यार,
मुरझाई पर दो आँसू भी,
नहीं करेगा बार।

रजनी बिखराती थी आँसू,
कर मौक्तिक बौछार,
चाँद लोटता था इस नभ पर,
पहन तारिकाओं का हार।

गिरि - कुञ्जों में नाच रही थी,

वन - सुरभि - साकार ।
उसी समय इस वीणा के,
भी झंकृत थे सब तार ।

हाय, सो गई स्वर - लहरी,
बिखर गये जब इस के तार,
गिरी हुई है धूली में अब,
कौन करेगा प्यार ।

—

तोड़ दो तुम प्रणय-बन्धन मैं प्रिये अब जा रहा हूं

मैं पथिक हूँ युग युगों का,
राह मेरी दूर की है,
रोक कर भी क्या करोगी,
जब नियति भी क्रूर ही है,
मिलन में भी चिर - विरह है,
दाह भी अन्तर्जलन भी,
वेदना क्यों मोल लूं मैं,
क्षणिक सुख की इस लगन में,
छोड़ कर ये सब झमेले ।
रूठ कर जग से चला हूं ।
तोड़ दो तुम प्रणय - बन्धन मैं प्रिये अब जा रहा हूँ ।

अश्रु - कण का दान दे कर,
स्नेह की लतिका पली थी,
प्रात के मधुमास में कुछ,
नवल कलियां भी खिली थीं,
फूल जब खिलने लगे थे,
भँवर भी मिलने लगे थे,
नियति के अभिशाप से वे,
धूल में भी मिल गये थे,
छोड़ कर जीवन-जलन को,
मैं अमर होने चला हूं।
तोड़ दो तुम प्रणय - बन्धन मैं प्रिये अब जा रहा हूँ।

—

मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उदगार भरा है

सूखे अधरों के कम्पन में,
शत-ज्वालामुखियों की धड़कन,
लाल लाल इन नयनों में भी,
प्रलयंकर ताण्डव नर्तन,
मेरी अन्तर की चिनगारी से,
चिर प्रज्वलित धरा है ।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्‌गार भरा है।

सागर के सीमित जल-कण में,
सागर प्रतिबिम्बित रहता है,

संसृति के कम्पित अणु अणु में,
संसृति का कम्पन बहता है,
मेरी भी लघु काया में,
भूमण्डल का विस्तार भरा है।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्गार भरा है।

दावानल की लपटों में,
मैंने शय्यागार किया है,
अम्बर के विस्तृत आँगन में,
सुख से चिर संचार किया है,
मेरी झंकृत वीणा में नव -
युग का नव स्वर निखरा है।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्गार भरा है।

युग युग से पददलित पराजित,
जग सुख की निद्रा सोता है,
बाहर अन्यायी के हाथों,
नारकीय अभिनय होता है,
मेरी सन्दीपित रग रग में,
प्रलयानल फिर से उभरा है।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्गार भरा है।

मानवता ही दानवता में,
परिवर्तित जब हो जाती है,
दुनिया का चित्र मिटाने को,
परिवर्तन - आँधी आती है,

संसृति के नव - सर्जन में,
मेरा ही मंगल - गान धरा है।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्‌गार भरा है।

जब नभ का उद्‌गम फूटेगा,
सागर का भी गर्जन होगा,
प्रबल प्रभंजन के झोकों से,
धूलि - पुँज का नर्तन होगा,
इस तूफानी आँधी में भी,
मेरा जग दीप जरा है।
मेरे इन सूने सपनों में तूफानों का उद्‌गार भरा है।

—

जीवन में आराम न पाया

शैशव में था मैं अनाथ,
यौवन में विपदों का साथ,
चुपके चुपके अन्तर्ज्वाला -
लपटों में मैं कितना रोया।
जीवन में आराम न पाया।

मग में जो जो साथ चले थे,
कुटिल काल के ग्रास बने थे,
एकाकी डग भरता भरता,
सूने पथ पर चलता आया।
जीवन में आराम न पाया।

डगमग पग पर उत्थित हो कर,
शूलों को गोदी में भर कर,
कल्पित भविष्य के सुमनों का,
नव-उपवन था तो भी लगाया।
जीवन में आराम न पाया।

भावुकता में बह बह कर,
पीड़ा को उर का हार बना कर,
स्वप्नों की दुनिया में बह कर,
क्षण भर मन को था नहलाया।
जीवन में आराम न पाया।

साकार हुआ था जब उपवन,
अस्थिर था यह जग का कण कण,
मुरझाया वह कुसुमित कानन,
जब भीषण पतझर आया।
जीवन में आराम न पाया।

—

कितना था मैं पछताया

निशा हुई थी, अन्धकार भी
नभ पर था छाया,
मेघों का भीषण गर्जन,
करता, दलबल था बढ़ आया।
कितना था मैं पछताया।

दमक रही थी बिजली क्षण क्षण,
बहती थी वायू भी सन सन,
उस कूचे की सूनी कुटिया में,
थी 'लोरी' की लघु छाया।

कितना था मैं पछताया।

लोरी ? हाँ लोरी प्यारी,
कितनी थी वह भोली भाली,
करुणा की प्रतिमा थी वह,
जिस में थो कुछ दैवी छाया।

कितना था मैं पछताया।

दुर्बल नन्हा कोमल तन,
चलती टाँगों होता सन सन,
माता के भारी थप्पड़ खा कर,
उसका मुख-मण्डल था मुरझाया।

कितना था मैं पछताया।

उसी निशा के अन्धकार में,
जल-थल वर्षा के जल-प्रपात में,
चली गई बाहर डग भरती,
ठिठुर रही थी कोमल काया।

कितना था मैं पछताया।

कपड़े धो कर डाले,
जो अब तक भीग चुके थे सारे,

गिरे पड़े थे ऊपर नीचे,
जिन पर मैलापन था आया।
कितना था मैं पछताया।

उठा लिया लोरी ने उन को,
कंधे पर रखा उस बण्डल को,
गीले भारी भरकम से,
साँसों में कम्पन भर आया।
कितना था मैं पछताया।

माता होगी खुश मुझ पर,
प्यार करेगी मुझ को द्रुत तर,
इस आशा के बल पर ही,
उस में था उत्साह समाया।
कितना था मैं पछताया।

पहुँची डग मग करती घर पर,
कपड़े रक्खे टेबुल पर,
माता आई देख दृश्य वह,
भौंहों में भीषण बल आया।
कितना था मैं पछताया।

अरे दुष्टनी, भीगे कपड़े,
तूने रखे टेबुल पर कपटे ?
भिगो दिया है सब कुछ अब,
इतना साहस तुझ में आया।
कितना था मैं पछताया।

मोटे मोटे हाथों की थी,
पड़ी चपेट कृश गालों पर,
चक्कर खाकर गिरी बालिका,
माता का मन था हर्षाया ।
कितना था मैं पछताया ।

उठी बालिका धीरे डर से,
काँप रही थी थर थर उर से,
दया भिक्षुणी निरपराध पर,
माता में वीरत्व समाया ।
कितना था मैं भरमाया ।

रुंधे कण्ठ से तुतले स्वर में,
कहा सभी लोरी ने क्षण में,
कहते कहते उस करुणा की,
प्रतिमा का उर भर आया ।
कितना था मैं पछताया ।

"मत मारो जी इस बिटिया को,
क्षण आगन्तुक शुभलक्ष्मी को,
पछताना होगा आखिर अवसर-
खोकर उसको किसने पाया ।"
कितना था मैं पछताया ।

चला गया मैं अपने घर,
कुछ ऐसी ही बातें कह कर,

नहीं गया फिर उस कूचे में,
जिस में मैंने था दुःख पाया।
कितना था मैं पछताया।

बीते दिन बीते कुछ मास,
आया इक बालक मेरे पास,
लगा बोलने मुख से कुछ बात,
मेरा मन था कुछ अकुलाया।
कितना था मैं पछताया।

बाबू जी, लोरी चली गई,
बेचारी कैसी छली गई,
हा राम ? सच, लोरी चली मई, ?
सुन कर मैं अति घबराया।
कितना था मैं पछताया।

हाँ, कल खेल गली से आई,
घर आ कर कुछ घबराई,
शायद माता ने थी धमकाई,
उस के सिर में चक्कर आया।
कितना था मैं घबराया।

बस उठी नहीं फिर शय्या से,
पिता गये थे बाहर घर से,
डाक्टर के आने तक ही,
वह छोड़ चली यह अस्थिर काया।
कितना था मैं घबराया।

सुन कर यह करुण कहानी,
मेरे मुख से निकली नहीं वाणी,
रुंधे कण्ठ में अकुला कर,
मेरा उर अति भर आया।
कितना था मैं पछताया।

उस दिन रोते रोते उसको
तुतली तुतली बातें करते,
उठा लिया था मैंने उस को,
फिर सहलाया गले लगाया।
कितना था मैं पछताया।

वह थी करुणा की रानी,
उस की थी दुःख भरी कहानी,
माता की चोटें सह सह कर,
उस का दम था घुट आया।
कितना था मैं पछताया।

जीवन के आठों मधुमासों में,
जलते उर के साँसों में,
नहीं सुखों का स्वप्न देख कर,
उसने क्षण भर मन बहलाया,
कितना था मैं पछताया।

कई बार मैं इस चिन्तन में,
बह कर पागल सा होता हूं,

करुणा - स्मृति के झोंके से,
आन्दोलित होती मेरी काया।
कितना था मैं पछताया।

वह थी काँटों की कलिका,
तन था उस का सूखी लतिका,
क्या सपने में भी देख सकूंगा,
वह भोला मुख - मुरझाया।
कितना था मैं पछताया।

--

उठ रे कवि कर भारी गर्जन

प्रवल शत्रु ललकार रहा है
काल-व्याल सा खड़ा द्वार पर
चीन - सर्प फुंकार रहा है
लौह - लेखनी खड्ग वना कर
वर्ण वर्ण में रण - चण्डी के
घोर रोर का शंख नाद कर
मातृ - भूमि की लाज वचाने
अरि मुण्डों का कर दे कर्तन।
उठ रे कवि कर भारी मर्दन॥

है विशाल भारत की सीमा
गौरव इस का हुआ न धीमा
शान्ति पाठ का अग्रदूत बन
विश्व - शान्ति का स्थापक बन
सदियों से है महा मान्य यह
विश्व-ख्याति से बड़ा धन्य यह
कण कण में ज्वाला भर आरि-
ईर्ष्यातुर का कर दे मर्दन ।
उठ रे कवि कर भारी गर्जन ।।

हाव - भाव रमणी के उर के
मत चित्रित कर नख-शिख उसके
मधु ऋतु की मृदुता के गाने
नहीं आज हैं कभी सुहाने
देख पवन अंगार बहाता
गगन मृत्यु का राग सुनाता
धराकाश के दिग् दिगन्त में
अट्टहास का मुखरित स्वन ।
उठ रे कवि कर भारी गर्जन ।।

छन्द - वर्ण - अक्षर की लड़ियां
उगलें भीषण ज्वाला मुखियां
ले ले कर प्रलयंकर गर्जन
उमड़ें कविता के गठ बन्धन
एक नई हुँकार उठा कर

कण कण में वीरत्व जगा कर
धरती के इस आंगन में
ला दो एक नया परिवर्तन।
उठ रे कवि कर भारी गर्जन॥

●

मत छेड़ो अब मीठा राग

नहीं जानते किस नभ से यह आँधी आयी
शत - शत विपदायें भारत पर छायीं
क्रूर शत्रु की गीध दृष्टि ललचायी
मातृभूमि के रजत मुकुट पर धूमिल छाया छायी
अब तो उनींदी आँखें खोलो
खर कृपाण हाथों में लेकर वैभव मद को भूलो
रक्षित हो यदि देश हमारा आन शान से
सब का ही रक्षित होगा वैभव सारा
नहीं समझ इतना भी पाये, बने आज भी
स्वारथ-काग ?
मत छेड़ो अब मीठा राग॥

यह स्वतन्त्रता कैसे आयी
मातृ-भूमि की बलि-वेदी पर
किस ने कितनी बलि चढ़ाई
किस प्रकार इस वन में थी

मधुऋतु की मधुसुषमा आयी
किस माली ने काँट-छाँट कर
यह बगिया है आज सजाई
सोच करो कुछ इन बातों पर
मरना सीखो देश प्रेम पर
धन अर्जन ही नहीं शूरता
मातृ-भूमि के चरणों पर भी
करो समर्पित जीवन - भाग ।
मत छेड़ो यह मीठा राग ।।

अग्नि-गान ही गाते जाओ
कण-कण में ज्वाला बरसाओ
रणचण्डी का बिगुल बजाकर
युद्धभूमि में सज-धज कर
प्रिय प्राणों पर खेल खेल कर
अपनी बलि चढ़ाओ
नव अर्जित है यह स्वतन्त्रता
भरी इसी में मन्त्र-मुग्धता
अब न भरो मद-मीठी तान
गाओ तुम प्रलयंकर गान
जन्म-भूमि स्वाधीन हमारी
इस का अमर सुहाग ।
मत छेड़ो अब मीठा राग ।।